हिंदी सिनेमा में स्त्री छवि

डॉ स्मिता मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007

विषय प्रवेश – *भारत में आजादी के बाद दलित - विमर्श और स्त्री - विमर्श दो प्रमुख चिंतन के केंद्र रहे। समाज के हर क्षेत्र में स्त्री की अस्मिता की पहचान की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। जहां अन्य क्षेत्रों में उसकी चेतना को स्वर मिल रहा है , प्रश्न यह है कि आज का मीडिया भी क्या नारी की अस्मिता को ईमानदारी से अभिव्यक्ति दे पा रहा है ? मैंने इस अध्ययन के लिये हिन्दी की तीन फ़िल्में चयनित की हैं जिनके विश्लेषण से हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि को मूल्यांकित करने का प्रयास किया है।*

मुख्य शब्द-
हिंदी सिनेमा,
नारी अस्मिता,
पारंपरिक छवि

विषय विवेचन - संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग के घोषणा - पत्र के बाद पूरे विश्व में नारी की वैचारिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए[1], किन्तु सामाजिक स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है , " उसमें आधुनिकता की प्रगति और परंपरा की दुर्गति में बहुत ज्यादा अंतर नहीं रह गया है। " नारी अस्मिता के प्रश्न को केंद्र में रखकर 20 वीं सदी का लेखा - जोखा किया जाए तो हम स्पष्टतः देखते हैं कि यह बीती हुई सदी नारी अस्मिता के संघर्षशील होने की गवाह रही। अपनी दोयम दर्जे की स्थिति से संघर्ष के लिये साठ के दशक में नारी मुक्ति आंदोलन ने जन्म लिया। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग के घोषणा पत्र के बाद पूरे विश्व में नारी की वैचारिक स्थिति में तो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए , किन्तु सामाजिक स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है , " उसमें आधुनिकता की प्रगति और परंपरा की दुर्गति में बहुत ज्यादा अंतर नहीं रह गया है। " तमाम प्रगति के बावजूद पुरुष का दृष्टिकोण वही है जिसे स्त्री का परंपरामुक्त होना सुविधाजनक तो लगता है किन्तु उससे रिश्ता जोड़ना नहीं चाहता। मनुष्य जाति का इतिहास देखे तो पायेंगे कि स्त्री ने एक लम्बी यात्रा तय की है . अपनी पारंपरिक सीमाओं को धकेलने में सदिया लगी हैं ,किन्तु पुरुष की यात्रा लम्बी नहीं रही । कमोबेश पुरुष आज भी उसी जगह के आसपास खड़ा है जहाँ सदियों के पहले खड़ा था। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि परिस्थितियाँ एवं शर्तें स्त्री के अनुकूल कभी नहीं रहीं सामाजिक| |एवं धार्मिक कारणों से सत्री घर के भीतर ही रही,और पुरुष घर के बाहर

भारत में आजादी के बाद दलित - विमर्श और स्त्री - विमर्श दो प्रमुख चिंतन के केंद्र रहे। समाज के हर क्षेत्र में स्त्री की अस्मिता की पहचान की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। जहां अन्य क्षेत्रों में उसकी चेतना को स्वर मिल रहा है , प्रश्न यह है कि आज का मीडिया भी क्या नारी की अस्मिता को ईमानदारी से अभिव्यक्ति दे पा रहा है ? मैंने इस अध्ययन के लिये हिन्दी सिनेमा को चुना है।

यदि हिन्दी सिनेमा के इतिहास पर एक दृष्टि डालें तो देखेंगे कि नारी और नारी समस्या शुरू से ही हिन्दी सिनेमा के केंद्र में रही है। यह बात अलग है कि हमारे फिल्मकारों ने अपनी इच्छानुसार प्रेम न करने और विवाह न कर पाने को ही नारी की सबसे बड़ी समस्या माना। दहेज , बाल विवाह , अनमेल विवाह आदि को चित्रित करते हुए भी मूल में प्रेम ही रखा। स्त्री का राधा या सीता रूप ही नायिका के चरित्र - चित्रण पर हावी रहा। शुरुआती दौर में पौराणिकता , सतीत्व , स्टंट मेलोड्रामा आदि पर आधृत कथानकों की भरमार रही , जिसमें स्त्री के त्याग , हृदय परिवर्तन को समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा। सातवें दशक में शुरू हुई यथार्थवादी फिल्मों ने नारी समस्या की जड़ को समझने की कोशिश की। नारी की आर्थिक परनिर्भरता समाज का सामंतवादी दृष्टिकोण तथा स्वयं को शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमजोर मानने की परंपरागत धारणा ही नारी दुर्दशा के केंद्र में है। इस बात को इस समय के फिल्मकारों ने बड़ी गहराई से समझा और सिनेमा के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस उद्देश्य के लिए मैंने तीन फिल्मों को विशेष रूप से देखा। इन्हीं तीन फिल्मों के माध्यम से मैं हिन्दी सिनेमा में स्त्री की आधुनिक छवि को स्पष्ट करना चाहती ये तीन फिल्में हैं महबूब खान की मदर इंडिया (1957) ,केतन मेहता की मिर्च मसाला (1989) , गुलशन राय की मोहरा (1994)

' मोहरा ' से बात शुरू करती हूं। प्रमुख नारी पात्र रोमा सिंह यानी रवीना टंडन ' समाधान ' नामक अखबार में सहायक संपादक है। ऐसा अखबार जो भ्रष्टाचार और सरकारी उपेक्षा के खिलाफ खड़ा होता है। अखबार के मालिक हैं श्री जिंदाल यानी नसीरुद्दीन शाह। रोमा एक आधुनिक नारी दिखायी देती है जिसमें साहस , दृढ़ता है। यह अलग बात है कि उसका प्रोफेशन उसे नायक से मिलाने का माध्यम भर है। पत्रकार की हैसियत से उसकी स्वयं की ताकत का चित्रण कहीं नहीं होता है। यानी सम्प्रेषित यह हुआ कि कामकाजी स्त्री को गंभीरता से नहीं लिया जाता। रोमा जब-जब इंस्पेक्टर अमर यानी अक्षय कुमार यानी फिल्म के नायक से मिलती है तब - तब सेक्सुअली आक्रामक नजर आती है। प्रसिद्ध गीत ' तू चीज बड़ी है मस्त मस्त ' में उसे कामुक वस्तु बनाकर फिल्म में नायक के सामने और थियेटर हॉल में दर्शकों के सामने परोसा जाता है। रोमा अपने प्रोफेशन में जो कुछ भी हासिल करती है , उसमें उसकी अपनी प्रतिभा का नहीं , बल्कि जिंदाल साहब के प्रभावशाली संपर्कों का योगदान अधिक होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस फिल्म से नारी को ' चीज ' मानने का जो बाजार ट्रेंड शुरू हुआ , उसकी लहर में तमाम फिल्में बनी जिसमें नारी देह को ही केंद्र में रखकर उसकी स्टीरियोटाइप छवि प्रस्तुत की गयी। उत्तेजक कोरियोग्राफी , अश्लील मुद्राओं को नृत्य में ढालकर अश्लीलता की जो आंधी चलायी वह अभी तक बरकरार है।

1957 में आयी ' मदर इंडिया ' में हालांकि शहरी स्त्री का चित्रण नहीं है। और न ही उसकी नायिका परंपरामुक्त है , फिर भी मेरे विचार से आधुनिक स्त्री की व्याख्या यह फिल्म कहीं बेहतर तरीके से कर पायी। स्वातंत्र्योत्तर भारत में नारी की चेतना को केंद्रित करके लिखी गयी फिल्म कथा में स्त्री की अंत:शक्ति पर फोकस किया गया है।हालांकि पश्चिमी नारी मुक्ति आंदोलन की कसौटी पर इसे कसा जाए तो यह महज मेलोड्रामा ही सिद्ध होगी किन्तु यदि अपनी जमीन की सच्चाइयों पर इसे परखा जाए तो यह अब तक की सर्वश्रेष्ठ फिल्म सिद्ध होगी। यह फिल्म भारत की आजादी के ठीक दस साल बाद बनी। इस फिल्म में महबूब ने समाजवादी आदर्शों और परंपरागत मूल्यों का सामंजस्य करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप यह फिल्म समाजवादी नारा भर नहीं लगती और न ही देवी देवताओं के चमत्कार की कहानी कहती है। फिल्म के शुरू में नरगिस गांव से गुजरने वाली नहर का उद्घाटन करती दिखाई पड़ती है। समारोह में खादी पहने तमाम विशिष्ट लोग हैं जो राधा यानी नरगिस को गांव की मां कहकर पुकारते हैं। सम सामयिक परिस्थितियों से

भरपूर ये शुरुआती घटनाएं सोच समझकर स्थापित की गयी हैं ताकि आने वाली शेष फिल्म को उसी दृष्टि से देखा जाए ।

अर्थात् निर्देशक यह चाहता है कि प्रारंभ से ही हमें यह मालूम चल जाये कि राधा के रूप में हम एक नयो औरत से वाबस्ता होने जा रहे हैं , एक ऐसी स्त्री जो तमाम संघर्षों से गुजरने के बाद समाप्त नहीं होती,हार नहीं मानती बल्कि जीवित रहती है और वह भी पूरे सम्मान के साथ। पूर्वदीप्ति शैली यानि फ़्लैश बेक में यह फिल्म चलती है। फिल्म के पूर्वार्ध में राधा का चित्रण एक परंपरागत भारतीय स्त्री के रूप में चित्रित किया जाता है। राधा का पति एक दुर्घटना में विकलांग हो जाता है। राधा के कमाने से ही सबका पेट भरता है ,किन्तु गाँव वाले पति को ताना मारते हैं कि पत्नी की कमाई खा रहा है। इससे तंग आकर वह एक दिन घर छोड़ कर चला जाता है। किन्तु पति के पलायन कर जाने के बाद वह नितांत अकेली हो जाती है।सामाजिक सुरक्षा भी उससे छीन जाती है। मौक़ा पाकर साहूकार बैल ले जाता है क्योंकि खेत और घर तो उसके यहाँ गिरवी पड़े हैं। घर में अभाव का भारी सन्नाटा छ जाता है। बच्चों को खाने के लिये नहीं है।तब थक हार कर पारंपरिक राधा घर से बाहर निकलती है और अपने कंधों पर जिंदगी का जुआ रखकर अपने बच्चों के साथ बंजर जमीन की परते तोड़ती है। संकेतार्थ यह निकलता है कि वह नारी की समाज में प्रचलित छवि को तोड़ती है। हल को कंधे पर लिये चेहरे पर पीड़ा , थकान की रेखाएं , फिर भी कर्मशील रहती है। नरगिस की यह छवि उन्हें अमर कर गई और आधुनिक भारतीय स्त्री का प्रतीक बना गयी। [2] फिल्म के उत्तरार्ध में दो बच्चों की मां राधा किस तरह गांव की मां और फिर देश की मां यानी ' मदर इंडिया ' बनती जाती है। वह अपने परिवार से गाँव के परिवार से जुडती है फिर बृहत्तर मानवीय मूल्यों की रक्षा में देश और मानव समाज के परिवार से जुड़ जाती है। वह गाँव की बेटी की रक्षा हेतु अपने बेटे की ही जान ले लेती है। यहाँ पर 'मदर इंडिया' नामकरण सार्थक सिद्ध हो जाता है I

1989 में आई केतन मेहता की ' मिर्च मसाला ' समानांतर फिल्म धारा की प्रतिनिधि फिल्म मानी जाती है जिसमें स्त्रिया पुरुष के सामन्तवाद के खिलाफ एकजुट होती है ।मिर्च मसाला में स्त्री के पूरे संघर्ष को केंद्रीकृत किया गया है। मुद्दा वही है कि पुरुष की आसक्ति एक स्त्री के प्रति इतनी हो जाती है कि वह उसे जबरन हासिल करना चाहता हैI सूबेदार नसीरुद्दीन शाह गाँव की विवाहित स्त्री सोनबाई स्मिता पाटिल को पाने की कोशिश करता है ,स्मिता पाटिल द्वारा अस्वीकार करने पर वह पूरे गाँव पर अत्याचार करना शुरू कर देता है I फिर पूरे गाँव के पुरुष भी सूबेदार के साथ मिलकर सोनबाई का विरोध करते हैं . एक दृश्य है जहाँ गाँव की स्त्रियाँ सामूहिक नृत्य कर रही हैं और सूबेदार कामुक दृष्टि से स्त्रियों को देख रहा है। मोहरा ' फिल्म में जिस की तरह गीत के.फिल्मांकन में नारी के अंगों को खंड - खंड में ' क्लोज अप ' लेकर कामुकता पैदा करने का प्रयास किया , वह यहाँ अनुपस्थित है। सूबेदार की कामुक दृष्टि सभी स्त्रियों को ऊपर से नीचे निहार रही है। परन्तु कहीं भी कैमरा सूबेदार की कामुकता को को दर्शक की कामुकता में तब्दील करने का प्रयास नहीं करता । सोनाबाई यानी स्मिता पाटिल को सूबेदार यानी नसीरुद्दीन शाह अपनी कामुकता का शिकार बनाना चाहता है। वह बचकर भागती हुई मिर्च की फैक्टरी में जा छिपती है , जहां वह काम करती है। विडम्बना यह है कि वहां काम करने वाली अन्य स्त्रियां पहले उसे से ही दोषी ठहराती हैं , तब सोनाबाई पलटकर पूछती है , क्या दोष सूबेदार की नजर में नहीं है ? तब किसी के पास इस बात का से जवाब नहीं होता। यदि सोनाबाई परंपरागत स्त्री होती तो वाकई अपने को ही इस घटना का जिम्मेदार मानती , किन्तु यहां नयी नारी का तेवर दृष्टिगत होता है। एक व्यंग्य और है कि गाँव के सारे मर्द और गाँव का मुखिया सूबेदार के घिनोने उद्देश्य में साथ हो जाते हैं जबकि मिर्च फैक्ट्री का बूढा चौकीदार अबू मियां मरते दम तक सूबेदार का विरोध करता है।[3]

सूबेदार दरवाजा तोड़कर जब फैक्टरी में घुसता है तो औरतें मिर्च को अपना हथियार बनाती हैं। वे सूबेदार और उसके साथियों की आंखों में मिर्च फेंकती है। यहाँ यह रूपक भी प्रयोग किया गया है कि मिर्च की यदि मात्रा थोड़ी होती है तो वह भोजन को चटपटा , जायकेदार बनाती न है , लेकिन यदि वह बहुतायत में हो तो जला भी सकती है। मिर्च और स्त्री के इस रूपक को इस फिल्म में बखूबी चित्रित किया का गया। फैक्टरी के चौकीदार अबू मियां यानी ओमपुरी सोनबाई को हैं ' काली मां ' कहकर बुलाते हैं क्योंकि वह काली है , उसका खून मिर्च की तरह गर्म है और जब सूबेदार अंतिम दृश्य में जमीन पर पड़ा छटपटा रहा है तो सोनबाई हाथ में हसिया लिये , आंख में मोटा काजल लगाये काली का ही अवतार लगती है। अर्थात स्त्री का अबला रूप भी चरम स्थितियों के आने पर सबला बन जाता है।

निष्कर्ष –

मैंने ऊपर तीन अलग - अलग फिल्मों का जिक्र किया , उनमें मैं किसी तरह का तारतम्य नहीं बिठाना चाहती। मेरा लक्ष्य यह है इंगित करना है कि नारी से संबंधित भिन्न - भिन्न दृष्टिकोण को का लेकर चली इन फिल्मों ने नारी की मुक्ति को भिन्न - भिन्न तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है। वस्तुत : नारी के चेतनशील व्यक्तित्व का उद्घाटन करना सही मायने में सिनेमा का उद्देश्य होना चाहिये। किन्तु हिन्दी सिनेमा ने स्त्री के चित्रण में इंद्रधनुषी रंगों का प्रयोग कम ही किया है। स्त्री जका संघर्ष मात्र देह ' माने जाने के विरुद्ध शुरू हुआ था , आज वह फिर उसी पर लौट आई है।

अत : जरूरी यह है कि सिनेमा में आधुनिकता और नारी की ऐसी स्त्रीवादी व्याख्या की जाय जो स्त्री को स्त्री के ही रूप में और अपनी शर्तों पर नये युग के अनुरूप बनने का अवसर दे और है , उसे हर क्षेत्र में सचमुच की भागीदारी दिलाए।

सन्दर्भ –

1. https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights
2. Changing Roles of Women in Indian Cinema: Ruchi Agarwal Silpakorn University Journal of Social Sciences, Humanities, and Arts Vol.14(2): page 121, 2014
3. https://www.researchgate.net/publication/279017811_Changing_Roles_of_Women_in_Indian_Cinema
4. Indian Cinema and Women: 1 SONU SHARMA, 2Dr. JITENDAR SINGH NARBAN, ijariie, Vol-2 Issue-1 2016 IJARIIE-ISSN(O)-2395-4396, page 493
5. http://ijariie.com/AdminUploadPdf/Indian_Cinema_and_Women_ijariie1615.pdf

Contributors Details:

डॉ स्मिता मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007